प्रवचन-१६५, श्लोक-२४२ से २४४, गाथा-१४४, बुधवार, ज्येष्ठ शुक्ल १३, दिनांक २५-०६-१९८०

कलश २४२

तपस्या लोकेऽस्मिन्निखिलसुधियां प्राणदयिता,
नमस्या सा योग्या शतमखशतस्यापि सततम्।
परिप्राप्यैतां यः स्मर-तिमिर-संसार-जनितं,
सुखं रेमे कश्चिद्धत कलिहतोऽसौ जडमतिः।।२४२।।

श्लोकार्थः इस लोक में तपश्चर्या... तपश्चर्या अर्थात् क्या? दीक्षा; और दीक्षा अर्थात् चारित्र। सम्यग्दर्शनसहित स्वरूप में लीनता, स्वरूप में चरना, इसका नाम तपश्चर्या है। **इस लोक में तपश्चर्या समस्त सुबुद्धियों को प्राणप्यारी है;...** आहाहा! सुबुद्धियों का—सम्यग्ज्ञानियों को अन्तर के स्वभाव की लीनता, रमणता, सुबुद्धि—सम्यग्ज्ञानी को प्यारी है। परन्तु यह तपश्चर्या। **वह योग तपश्चर्या सो इन्द्रों को भी...** वह योग्य तपश्चर्या सौ इन्द्रों को, सौ इन्द्रों को भी **सतत वन्दनीय है।** इन्द्रों को भी वह तपश्चर्या वन्दनीय है। आहाहा!

उसे प्राप्त करके जो कोई जीव कामान्धकारयुक्त संसारजनित सुख में रमता है,... आहाहा! इच्छा करके, परपदार्थ में प्रेम करके जो रहता है। अपने आनन्द और ज्ञानानन्द को छोड़कर.... जो सौ इन्द्रों को भी पूजनीय है और सुबुद्धि को भी प्यारी है, ऐसी अन्तर आनन्द की धारा, ऐसी तपस्या पाकर भी जो जीव कामान्धकारयुक्त-काम में अन्धा होकर संसार से जनित... आहाहा! संसार में राग से जनित सुख में रमता है, वह राग से जनित राग में रमता है। आहाहा!

वह जड़मति... राग है, वह वास्तव में जड़ है। शुभराग हो या अशुभराग हो, परन्तु वह जड़ है। चैतन्य का संग्रहालय स्वभाव जो भगवान आत्मा का, उससे राग, वह जड़-विपरीत है, तथापि कहते हैं, अज्ञानी, **वह जड़मति अरे रे! कलि से हना हुआ है...** कलिकाल के कारण हना गया है। **(-कलिकाल से घायल हुआ है)।** वह राग से सुख में रमता है। आहाहा! अपना स्व आनन्द अन्दर है, अतीन्द्रिय आनन्द की खान

है, उसमें नहीं रमता और उसे छोड़कर राग में रमता है, वह जड़मति है। अरे रे! कलिकाल ने घात डाला है। उसे कलिकाल ने घात डाला है, कहते हैं। आहाहा! अब ऐसी बातें।

यह तपश्चर्या वापस यह अपवास और वह नहीं, हों! यह तो कहेंगे १४४ में। वे सब क्रियाएँ तो शुभराग हैं। अपवास और उनोदरी और रस परित्याग और... अरे! बारह प्रकार का तप, सब शुभराग है। आहाहा! वह कोई चारित्र नहीं है, वह तपस्या नहीं है। यहाँ कहते हैं, ऐसी जो अन्तर की आनन्द की दशारूप तपस्या, जो सुबुद्धियों को-ज्ञानियों को प्रिय है और सौ इन्द्रों से पूजनीय है, उसे छोड़कर राग की रमणता में सुख मानता है... आहाहा! विकल्प में सुख मानता है, वह जड़मति कलिकाल से घायल हुआ है। आहाहा! २४२ (श्लोक पूरा) हुआ।

श्लोक-२४३

(आर्या)

अन्यवशः सन्सारी मुनिवेषधरोऽपि दुःखभाङ्नित्यम्।
स्व-वशो जीवन्मुक्तः किञ्चिन्न्यूनो जिनेश्वरा-देषः ।।२४३।।

(वीरछन्द)

मुनिवेषी हो किन्तु अन्यवश, संसारी दुःख भोगी है।
जीव स्ववश तो जीवन्मुक्त, जिनेश्वर से किंचित कम है॥२४३॥

[श्लोकार्थः] जो जीव अन्यवश है, वह भले मुनिवेषधारी हो, तथापि संसारी है, नित्य दुःख का भोगनेवाला है; जो जीव स्ववश है, वह जीवन्मुक्त है, जिनेश्वर से किंचित् न्यून है (अर्थात् उसमें जिनेश्वरदेव की अपेक्षा थोड़ी-सी कमी है)॥२४३॥

श्लोक -२४३ पर प्रवचन

२४३ (श्लोक)

अन्यवशः सन्सारी मुनिवेषधरोऽपि दुःखभाङ्नित्यम्।
स्व-वशो जीवन्मुक्तः किञ्चिन्न्यूनो जिनेश्वरा-देषः।।२४३।।

श्लोकार्थः आहाहा! **जो जीव अन्यवश है...** जो जीव भगवान आत्मा के वश नहीं है। अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर प्रभु, उसके वश नहीं है। **वह भले मुनिवेषधारी हो...** नग्न मुनि हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, पंच महाव्रत पालता हो, **तथापि संसारी है,...** आहाहा! क्योंकि वह राग है, वह स्वयं संसार है। रागरहित भगवान मुक्तस्वरूप स्वयं है। मुक्तस्वरूप का अवलम्बन छोड़कर बन्धभाव का अवलम्बन लेकर रमता है, वह संसारी है। नग्नमुनि हो, दिगम्बर हो तो भी वह संसारी प्राणी है। आहाहा!

वह **नित्य दुःख का भोगनेवाला है;...** अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ प्रभु को न संभालकर वह मान और इज्जत-कीर्ति के राग को याद करके अति दुःख को भोगनेवाला है। आहाहा! प्रतिकूल संयोग, वह कहीं दुःख नहीं है। संयोग प्रतिकूल है, वह कहीं दुःख नहीं है। मात्र उनकी ओर का झुकाव होकर, स्वभाव सन्मुख का झुकाव छोड़े, वह दुःख है। आहाहा! आनन्द का सागर सच्चिदानन्द प्रभु का आश्रय और अवलम्बन छोड़कर राग के अवलम्बन की क्रीड़ा में रमे, वह मुनिवेशधारी हो... आहाहा! वह नग्नपना हो, पंच महाव्रत पालता हो... आहाहा! तो भी संसारी है। ऐसी बातें कठिन (लगती है)। नग्नमुनि, हों! तुम्हारे वस्त्रवाले की तो बात ही नहीं है। वह तो साधु नहीं और मिथ्यादृष्टि है। कपड़े का टुकड़ा रखकर मुनि माने, मनावे, वह तो गृहीत मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

यह तो नग्न मुनि है, पंच महाव्रत पालते हैं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं परन्तु चैतन्यस्वरूप भगवान को छूता नहीं, स्पर्श नहीं करता, वेदन नहीं करता, अनुभव नहीं करता, वह राग को वेदता है। राग को वेदन करनेवाला, वह संसारी है। आहाहा! ऐसी बात है। एक ओर भगवान वीतराग चैतन्यस्वरूप तथा एक ओर पुण्य के विकल्प से लेकर पूरा संसार। उसमें कहीं भी प्रेम रखा, वह दुःख को भोगनेवाला है। आहाहा!

जो जीव स्ववश है... भाषा सादी है परन्तु वस्तु अलौकिक है। भाषा में 'जीव

स्ववश है' इतना शब्द है। आहाहा! परन्तु इसका अर्थ अनन्त गुण का धनी निर्विकल्प प्रभु, उस निर्विकल्प के वश जो है, वह स्ववश है। विकल्प के वश, राग के वश, वह परवश है। आहाहा! **जो जीव स्ववश है, वह जीवन्मुक्त है,...** लो! यहाँ तो जीवन्मुक्त कहा। चौथे गुणस्थान से एक न्याय से जीवन्मुक्त कहा। आहाहा! शरीर के परमाणु... आहाहा! जलकर राख होंगे यह तो। यह तो राख होनेवाली है। यह कहीं आत्मा नहीं है। इसे स्ववश को छोड़कर राग के वश पड़कर, शरीरादि के वश पड़कर जो राग को वेदता है, वह मुनि वेशधारी हो तो भी वह संसारी है और जो स्ववश है... बहुत संक्षिप्त भाषा! जो कोई अतीन्द्रिय आनन्द, ऐसा जो स्वभाव, उसके सन्मुख होकर वश हुआ है, राग से भिन्न पड़ गया है, वह जीवन्मुक्त है। आहाहा!

जिनेश्वर से किंचित् न्यून है... वीतराग से किंचित्-जरा न्यून है। आहाहा! आगे तो यह कहेंगे कि दोनों समान है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतरागता को प्राप्त हैं, परन्तु यहाँ आत्मा के वश है, वह भी जीवन्मुक्त, जिनेश्वर से किंचित् न्यून है। जिनेश्वर वीतराग परमात्मा अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर देवाधिदेव... आहाहा! उनसे स्ववश मुनि थोड़ा कम है-थोड़ा न्यून है। आहाहा! छद्मस्थ है न, अभी थोड़ा राग है और अल्पज्ञ है। आहाहा!

(अर्थात् उसमें जिनेश्वरदेव की अपेक्षा थोड़ी-सी कमी है)। आहाहा! यह मुनिपना, यह साधु, यह दिगम्बर साधु। आहाहा! सर्वज्ञ वीतराग जिनेश्वरदेव से जरा न्यून है, उसे यहाँ मुनि कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो जरा वस्त्र छोड़कर... विधवा स्त्री हो और वस्त्र बदले तो साध्वी हो गयी। साध्वी। फिर सब जय नारायण करे। आहाहा!

मुमुक्षु : फिर कहे धर्म लाभ।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कहाँ था? अधर्म लाभ है। आहाहा!

स्ववश है, वह सुखी है और परवश—राग के वश है, चाहे तो मुनि वेश धारण कर पड़ा हो परन्तु किसी भी जगत की चीज़ में राग होकर राग में रमता है... आहाहा! वह दुःखी है, वह संसारी है। आहाहा! है न? आहाहा! २४३ (श्लोक पूरा हुआ)।

श्लोक-२४४

(आर्या)

अत एव भाति नित्यं स्ववशो जिननाथमार्गमुनिवर्गे।
अन्य-वशो भात्येवं भृत्य-प्रकरेषु राज-वल्ल-भवत्।।२४४।।

(वीरछन्द)

अतः स्ववश मुनि जिनशासन में मुनिसमूह में शोभित है।
और अन्यवश मुनि भृत्यों में नृपवल्लभ सम शोभित है॥२४४॥

[श्लोकार्थः] ऐसा होने से ही जिननाथ के मार्ग में मुनिवर्ग में स्ववश मुनि सदा शोभा देता है; और अन्यवश मुनि नौकर के समूहों में *राजवल्लभ नौकर समान शोभा देता है (अर्थात् जिस प्रकार योग्यता रहित, खुशामदी नौकर शोभा नहीं देता; उसी प्रकार अन्यवश मुनि शोभा नहीं देता)॥२४४॥

श्लोक - २४४ पर प्रवचन

२४४ (श्लोक)

अत एव भाति नित्यं स्ववशो जिननाथमार्गमुनिवर्गे।
अन्य-वशो भात्येवं भृत्य-प्रकरेषु राज-वल्ल-भवत्।।२४४।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **ऐसा होने से... ऐसा होने से ही जिननाथ के मार्ग में...** जिनेश्वरदेव वीतराग परमात्मा के मार्ग में **मुनिवर्ग में स्ववश मुनि सदा शोभा देता है;...** मुनि के समुदाय में आत्मा के वश है, वह शोभता है। आहाहा! जिसने वीतरागी स्वरूप प्रगट किया है, और उसके वश पड़ा है, वह मुनिवर्ग में शोभता है। आहाहा! **और अन्यवश मुनि...** स्वरूप को भूलकर राग के वश पड़ा हुआ... आहाहा! वह **मुनि नौकर के समूहों में राजवल्लभ नौकर समान...** खुशामदिया होते हैं न? खुशामदिया। सबकी खुशामद

* राजवल्लभ=जो (खुशामद से) राजा का मानीता (माना हुआ) बन गया हो।

(करे) । दूसरे को अनुकूल दिखाने के लिये ऐसी सब खुशामद करे । आहाहा ! खुशामदिया । राजवल्लभ जो खुशामदिया नौकर समान शोभता है ।

(अर्थात् जिस प्रकार योग्यता रहित, खुशामदी नौकर शोभा नहीं देता, उसी प्रकार अन्यवश मुनि शोभा नहीं देता)। आहाहा ! कोई गृहस्थ हो, राजा हो, सेठ हो, उसके मक्खन लगाये, उसके अनुकूल (वर्ते), मानो... ओहो ! कहते हैं कि वह सब नौकर जो राजवल्लभ—खुशामदिया होवे, वैसे वे हैं । आहाहा ! शास्त्र में तो ऐसा चला है । यदि मुनि राजा का संग करे तो पराधीन हो जाता है या दबता है । बड़ा पुण्यशाली हो और दब जाए । धूल में पुण्यशाली हो, उसमें क्या है ? आहाहा ! आत्मा के वश बिना प्राणी भले पुण्य से चाहे तो बड़ा चक्रवर्ती हो, वह सब बहिरात्मा दुःखी है । आहाहा ! और गरीब हो, पैसा मिले नहीं, निर्धन हो, एक समय खाने का भी न मिलता हो... आहाहा ! ऐसा जीव भी स्ववश चैतन्य के वश जो हो... आहाहा ! वह सुखी है । व्याख्या ही पूरी अलग ।

अन्तर के आनन्द में रहनेवाला, वह सुखी है । आहाहा ! और राग के किसी भी कार्य में रमनेवाला और प्रेम से उसे अपना मानकर रमनेवाला वह खुशामदी नौकर जैसा है । दूसरे को अनुकूल करने के लिये मक्खन लगावे । आहाहा ! ऐसे लोग होते हैं न ? हाँ, भाईसाहब... हाँ, भाईसाहब... हाँ, भाईसाहब... किया करे । अनुकूल बोला ही करे । सामने भले गप्प मारता हो । ऐसे पर को अनुकूल खुशामदिया नौकर जैसे ऐसे मुनि वेशधारी हैं, कहते हैं । आहाहा !

गाथा-१४४

जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो।
तम्हा तस्स दु कम्मं आवासयलक्खणं ण हवे ।।१४४।।

यश्चरति संयतः खलु शुभ-भावे स भवेदन्यवशः।
तस्मात्तस्य तु कर्मावश्यक-लक्षणं न भवेत् ।।१४४।।

अत्राप्यन्यवशस्याशुद्धान्तरात्मजीवस्य लक्षणमभिहितम्। यः खलु जिनेन्द्रवदनारविन्द-विनिर्गतपरमाचारशास्त्रक्रमेण सदा संयतः सन् शुभोपयोगे चरति, व्यावहारिकधर्मध्यान-परिणतः अत एव चरणकरणप्रधानः, स्वाध्यायकालमवलोकयन् स्वाध्यायक्रियां करोति, दैनं दैनं भुक्त्वा चतुर्विधाहारप्रत्याख्यानं च करोति, तिसृषु सन्ध्यासु भगवदर्हत्परमेश्वरस्तुति-शतसहस्रमुखरमुखारविन्दो भवति, त्रिकालेषु च नियमपरायणः इत्यहोरात्रेऽप्येकादश-क्रियातत्परः, पाक्षिकमासिकचातुर्मासिकसाम्वत्सरिकप्रतिक्रमणाकर्णनसमुपजनितपरितोषरोमाञ्चकञ्चुकित-धर्मशरीरः, अनशनावमौदर्यरसपरित्यागवृत्तिपरिसन्ख्यानविविक्तशयनासन-कायक्लेशाभिधानेषु षट्सु बाह्यतपस्सु च सन्ततोत्साहपरायणः, स्वाध्यायध्यानशुभाचरणप्रच्युतप्रत्यवस्थापनात्मक-प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यव्युत्सर्गनामधेयेषु चाभ्यन्तरतपोऽनुष्ठानेषु च कुशलबुद्धिः, किन्तु स निरपेक्षतपोधनः साक्षान्मोक्षकारणं स्वात्माश्रयावश्यककर्म निश्चयतः परमात्मतत्त्वविश्रान्तिरूपं निश्चयधर्मध्यानं शुक्लध्यानं च न जानीते, अतः परद्रव्यगतत्वाद-न्यवश इत्युक्तः।

अस्य हि तपश्चरणनिरतचित्तस्यान्यवशस्य नाकलोकादिक्लेशपरम्परया शुभोपयोग-फलात्मभिः प्रशस्तरागाङ्गारैः पच्यमानः सन्नासन्नभव्यतागुणोदये सति परमगुरुप्रसादा-सादितपरमतत्त्वश्रद्धानपरिज्ञानानुष्ठानात्मकशुद्धनिश्चयरत्नत्रयपरिणत्या निर्वाणमुपयातीति।

संयत चरे शुभभाव में वह श्रमण है वश अन्य के।
अतएव आवश्यक-स्वरूप न कर्म होता है उसे ॥१४४॥

अन्वयार्थ : [यः] जो (जीव) [संयतः] संयत रहता हुआ [खलु] वास्तव में [शुभभावे] शुभभाव में [चरति] चरता—प्रवर्तता है, [सः] वह [अन्यवशः

भवेत्] अन्यवश है; [तस्मात्] इसलिए [तस्य तु] उसे [आवश्यकलक्षणं कर्म] आवश्यकस्वरूप कर्म [न भवेत्] नहीं है।

टीका : यहाँ भी (इस गाथा में भी), अन्यवश ऐसे अशुद्धअन्तरात्मजीव का लक्षण कहा है।

जो (श्रमण) वास्तव में जिनेन्द्र के मुखारविन्द से निकले हुए परम-आचारशास्त्र के क्रम से (रीति से) सदा संयत रहता हुआ शुभोपयोग में चरता—प्रवर्तता है; व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है, इसीलिए चरणकरणप्रधान है; स्वाध्याय काल का अवलोकन करता हुआ (स्वाध्याययोग्य काल का ध्यान रखकर) स्वाध्यायक्रिया करता है, प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता है, तीन सन्ध्याओं के समय (-प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल) भगवान अर्हत परमेश्वर की लाखों स्तुति मुखकमल से बोलता है, तीनों काल नियम परायण रहता है (अर्थात् तीनों समय के नियमों में तत्पर रहता है)—इस प्रकार अहर्निश (दिन-रात मिलकर) ग्यारह क्रियाओं में तत्पर रहता है; पाक्षिक, मासिक, चातुर्मासिक तथा सांवत्सरिक प्रतिक्रमण सुनने से उत्पन्न हुए सन्तोष से जिसका धर्म शरीर रोमांच से छा जाता है; अनशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश नाम के छह बाह्य तप में जो सतत उत्साहपरायण रहता है; स्वाध्याय, ध्यान, शुभ आचरण से च्युत होने पर पुनः उनमें स्थापनस्वरूप प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य और व्युत्सर्ग नामक अभ्यंतर तपों के अनुष्ठान में (आचरण में) जो कुशलबुद्धिवाला है; परन्तु वह निरपेक्ष तपोधन साक्षात् मोक्ष के कारणभूत स्वात्माश्रित आवश्यक-कर्म को—निश्चय से परमात्मतत्त्व में विश्रान्तिरूप निश्चयधर्मध्यान को तथा शुक्लध्यान को—नहीं जानता; इसलिए परद्रव्य में परिणत होने से उसे अन्यवश कहा गया है। जिसका चित्त तपश्चरण में लीन है, ऐसा यह अन्यवश श्रमण देवलोकादि के क्लेश की परम्परा प्राप्त होने से शुभोपयोग के फलस्वरूप प्रशस्त रागरूपी अंगारों से सिकता हुआ, आसन्नभव्यतारूपी गुण का उदय होने पर परमगुरु के प्रसाद से प्राप्त परमतत्त्व के श्रद्धान-ज्ञान-अनुष्ठानस्वरूप शुद्ध-निश्चय-रत्नत्रयपरिणति द्वारा निर्वाण को प्राप्त होता है (अर्थात् कभी शुद्ध-निश्चयरत्नत्रयपरिणति को प्राप्त कर ले तो ही और तभी निर्वाण को प्राप्त करता है)।

---

* चरणकरणप्रधान=शुभ आचरण के परिणाम जिसे मुख्य हैं ऐसा।

श्लोक -१४४ पर प्रवचन

१४४ गाथा। अब शुभभाव का आया। वह अशुभभाव का था।

जो चरदि संजदो खलु सुहभावे सो हवेइ अण्णवसो।
तम्हा तस्स दु कम्मं आवासयलक्खणं ण हवे।।१४४।।

संयत चरे शुभभाव में वह श्रमण है वश अन्य के।

(आहाहा!) साधु होकर, नग्न होकर, दिगम्बर होकर (आहाहा!)

अतएव आवश्यक-स्वरूप न कर्म होता है उसे॥१४४॥

आहाहा! **टीका : यहाँ भी (इस गाथा में भी), अन्यवश ऐसे अशुद्धअन्तरात्मजीव का लक्षण कहा है।** शुभभाव पराधीन है। शुभभाववाला अपने को शुभभाववाला माने तो मिथ्यादृष्टि है परन्तु शुभभाव में रुके तो भी वह अशुद्ध आत्मा है। आहाहा! **अन्यवश ऐसे अशुद्धअन्तरात्मजीव का लक्षण कहा है। जो (श्रमण) वास्तव में जिनेन्द्र के मुखारविन्द से...** भगवान का बदन अर्थात् मुख, अरविन्द अर्थात् कमल। भगवान के मुखरूपी कमल में से **निकले हुए परम-आचारशास्त्र के क्रम से (रीति से)...** आहाहा! व्यवहार। **सदा संयत रहता हुआ शुभोपयोग में चरता—प्रवर्तता है;...** जितनी भगवान का कहा हुआ व्यवहार का क्रियाकाण्ड, चरणानुयोग में (कही गयी) उस क्रिया में जो रमता है... आहाहा!

व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है... देखा! धर्मध्यान के दो प्रकार। निश्चय धर्मध्यान और व्यवहार धर्मध्यान। शुभभाव, वह व्यवहार धर्मध्यान कहा जाता है। है अधर्म। शुभभाव, वह धर्म नहीं; अध है-पाप है। **व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है, इसीलिए चरणकरणप्रधान है;...** उसे तो **शुभ आचरण के परिणाम जिसे मुख्य हैं...** दया, सत्य, व्यवहार, आचरण, प्रतिक्रमण... आहाहा! शास्त्र बाँटना और शास्त्र देना...

मुमुक्षु : ऐसे मुनि तो इस काल में कहीं मिलते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए मुनि-सच्चे मुनि तो दिखते नहीं। व्यवहारवाले दिखते हैं। आहाहा! क्या हो? श्रुतसागर तो ऐसा कहते हैं कि अभी शुभभाव ही होता है। यहाँ

कहते हैं कि शुभभाव के वश हुआ मिथ्यादृष्टि होता है। आहाहा! किसे कहना? किसे त्रुटक? आहाहा! ज्ञानमति आर्यिका कहती है कि हम अभव्य है या काललब्धि पकी है, वह भगवान जाने। अपने को कुछ खबर नहीं पड़ती। अर..र..र! अभी अभव्य है या नहीं, इसकी खबर नहीं पड़ती, वह धर्म की बातें करे। आहाहा! अन्ध खाता चलता है।

व्यावहारिक धर्मध्यान में परिणत रहता है, इसीलिए चरणकरणप्रधान है;... उसे वह क्रियाकाण्ड ही मुख्य है। **स्वाध्याय काल का अवलोकन करता हुआ...** स्वाध्याय का काल, शास्त्र कब पढ़ना, उसे अवलोकता है। वह सब तो व्यवहार है, वह सब तो विकल्प और राग है। आहाहा! स्वाध्याय-योग्य काल का ध्यान रखे। स्वाध्याय क्रिया करे। बराबर सवेरे स्वाध्याय करे, रात्रि में करे। आहाहा! यह स्वाध्याय शास्त्र की करे तो वह राग है। आहाहा! भारी कठिन काम।

प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता है,... प्रतिदिन एक बार भोजन करके और फिर आहार-पानी का त्याग करे, तो भी वह तो शुभभाव है। वह कोई धर्मध्यान नहीं है। आहाहा! कठिन काम है, भाई! **प्रतिदिन भोजन करके चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता है,...** चारों ही आहार नहीं करना, ऐसा प्रत्याख्यान करता है, तथापि वह शुभभाव है। **तीन सन्ध्याओं के समय (-प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल) भगवान अर्हत परमेश्वर की लाखों स्तुति...** आहाहा! भगवान की लाखों स्तुति करे, वह शुभराग है। तीर्थंकरदेव की प्रतिमा की या साक्षात् की स्तुति करे परन्तु वह परद्रव्य है, उनकी स्तुति है वह शुभराग है। आहाहा! बहुत लाखों स्तुति करे, ऐसा कहते हैं। ओहोहो! एक दिन में तो लाखों होवे नहीं। भले लाखों स्तुति करता हो। आहाहा!

स्तुति मुखकमल से बोलता है,... मुख से बोलता है। भगवान अरिहन्त ऐसे, तीर्थंकरदेव केवली तीन काल के जाननेवाले देवाधिदेव, वह सब परद्रव्य की व्याख्या है, वह कहीं वहाँ आत्मा नहीं है। आहाहा! यह वीतराग का स्मरण, वह भी शुभराग है, वह धर्मध्यान नहीं। आहाहा! सम्प्रदाय में यह बात कठिन पड़े या नहीं? एक ही यह चलता है। यह करो और यह करो और यह करो, यह करो। आहाहा!

तीनों काल नियम परायण रहता है... आहाहा! **(अर्थात् तीनों समय के नियमों में तत्पर रहता है)...** सवेरे, दोपहर में और शाम में जो नियम होते हैं, वे नियम बराबर होते

हैं। तथापि वह नियमसार नहीं है। आहाहा! **इस प्रकार अहर्निश (दिन-रात मिलकर) ग्यारह क्रियाओं में तत्पर रहता है;...** आहाहा! शास्त्र स्वाध्याय करे, शास्त्र लिखे, शास्त्र बोले। आहाहा! ये सब ग्यारह क्रियाएँ राग की हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : साधु की क्रिया कौन सी?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तरध्यान में, आनन्द में रहना, वह क्रिया है।

मुमुक्षु : इसमें ग्यारह क्रिया कही न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कही न, वह दूसरी, वह सब ऊपर नहीं कही? यह क्या कहा? स्वाध्यायक्रिया करे, प्रतिदिन भोजन करके चार प्रकार का आहार त्याग करे, तीन सन्ध्या भक्ति (करे), यह होकर ग्यारह है। ऊपर कही, ऐसी होकर ग्यारह है। नयी नहीं है।

भगवान अर्हत परमेश्वर की लाखों स्तुति मुखकमल से बोलता है, तीनों काल नियम परायण रहता है (अर्थात् तीनों समय के नियमों में...) सवेरे बराबर प्रतिक्रमण करे, शाम का प्रतिक्रमण करे, बराबर ध्यान रखे। आहाहा! **इस प्रकार अहर्निश (दिन-रात मिलकर) ग्यारह क्रियाओं में तत्पर रहता है;...** ऊपर कही वह सब। **पाक्षिक, मासिक,...** आहाहा! पाक्षिक का प्रतिक्रमण करे, पन्द्रह दिन का प्रतिक्रमण करे, महीने का प्रतिक्रमण करे, चार महीने का प्रतिक्रमण करे और संवत्सरी-वार्षिक प्रतिक्रमण करे। आहाहा!

उस **प्रतिक्रमण सुनने से उत्पन्न हुए सन्तोष से...** प्रतिक्रमण में तो उसे सन्तोष हो जाता है कि... आहाहा! अपने तो बहुत किया। प्रतिक्रमण किया, यह किया, वह किया, संवत्सरी का दिन। आहाहा! सामायिक की, भगवान की स्तुति की, वन्दन किया, कायोत्सर्ग किया। आहाहा! सब क्रिया राग की है। उसमें आत्मा कहीं नहीं आया। आहाहा! यह शुभभाव की गाथा है। शुभभाव की क्रिया हो, वह परवश है। वह स्वाधीन नहीं, वह स्ववश नहीं। आहाहा!

अपना आत्मा जो चैतन्यस्वरूप, जिसमें राग और विकल्प का अभाव है, उसके आश्रय बिना चाहे जितना क्रियाकाण्ड में जुड़े। सवेरे से शाम तक क्रियाकाण्ड (करे)... आहाहा! मासिक आदि करे और वे करते हुए **जिसका धर्म शरीर रोमांच से छा जाता**

है;... क्या कहते हैं ? संवत्सरी का, मासिक का प्रतिक्रमण ऐसा करे कि क्रिया में अन्दर रोम-रोम प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए कि आहाहा ! हमने तो बहुत धर्मध्यान किया। वह सब राग है, धर्म नहीं। आहाहा ! ऐसी क्रिया को धर्म मनावे, माने, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! कितनी क्रिया ली ? बहुत ली है। **जिसका धर्म शरीर...** क्या कहते हैं ? यह क्रिया करने में जिसे अन्दर रोम-रोम सन्तुष्ट हो जाता है (कि) हम बहुत करते हैं। पूरे दिन इसी में पड़े हैं। धर्मध्यान में ही पड़े हैं। हमने दुकान और धन्धा छोड़ दिया है। आहाहा ! तथापि वह राग है, वह धर्म नहीं। आहाहा !

अनशन,... करे। इसमें सब बात डाली है। अनशन, छह-छह महीने के अपवास करे, **अवमौदर्य,...** पेट पूरा न भरे, वह भी शुभभाव है, धर्म नहीं। **रसपरित्याग,...** यह दूध चले नहीं, दही चले नहीं, आम का रस चले नहीं, ऐसा जो रस का परित्याग, वह भी शुभभाव है; धर्मध्यान नहीं। परवस्तु की ओर के त्याग का लक्ष्य (रहना), वह सब शुभराग है। आहाहा ! **रसपरित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान,...** वृत्ति को संकुचित करे कि मुझे इस घर में ही जाना, अन्यत्र नहीं जाना। वह भी शुभभाव है, वह कहीं धर्मध्यान नहीं है। आहाहा ! **विविक्त शय्यासन...** अर्थात् अलग आसन रखे, अकेला (रहे), किसी के साथ मेल नहीं। एकान्त रहे। वह भी शुभभाव है। एकान्त तो यह आत्मा में अन्दर रहे, तब एकान्त कहलाता है। आहाहा !

है न ? **कायक्लेश...** अपवास करके शरीर जीर्ण कर डाले। तीन-तीन, चार-चार, पाँच-पाँच, आठ-आठ अपवास करके शरीर जीर्ण करे। शरीर जीर्ण क्या ? मर जाए, देह छोड़ दे। कितने ही अपवास इतने होते हैं, छोटी लड़कियाँ-बड़कियाँ करे और कुम्बजा पड़े रहे, वहाँ मर जाए। यह सब सुना है। आहाहा ! परन्तु वह कोई धर्म नहीं। आहाहा ! उन **कायक्लेश नाम के छह बाह्य तप में जो सतत उत्साहपरायण रहता है;...** उसमें निरन्तर उत्साह और तत्पर रहता है। आहाहा ! **स्वाध्याय,...** करे शास्त्र की, वह भी शुभभाव है। आहाहा ! बहुत कठिन काम। जितनी क्रियाएँ हैं, वह सब शुभराग है। शास्त्र का स्वाध्याय करे। हमारे सम्प्रदाय में रात्रि के घण्टे, डेढ़ घण्टे, दो घण्टे स्वाध्याय करते थे। रात्रि में चर्चा नहीं करते हजार-पन्द्रह सौ गाथा फिराते। हजार-पन्द्रह सौ प्रतिदिन। कण्ठस्थ किये हुए, छह हजार श्लोक कण्ठस्थ थे। कण्ठस्थ छह हजार श्लोक ! हम रात्रि में इकट्ठे होकर स्वाध्याय करते हैं।

मुमुक्षु : ऐसे फिरावे..... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : फिरावे अर्थात् उसे ऐसा हो। आहाहा! हमने तो आज बहुत किया है। पहले पहर में स्वाध्याय आता है न श्वेताम्बर में ? पढम पहोरे सज्झाय.... रात्रि के पहले पहर में सज्झाय, दूसरे पहर में ध्यान, तीसरे पहर में जरा निद्रा, चौथे पहर में फिर सज्झाय। ऐसी गाथा आती है। 'उत्तराध्ययन' की २६वीं गाथा है। २६वें अध्ययन में। उसका भी कहाँ ठिकाना है ? आहाहा! यह तो उस प्रकार से बराबर करे, कहते हैं।

ऐसा **जो सतत उत्साहपरायण रहता है;...** निरन्तर उत्साहपरायण उस क्रिया में रहता है। आहाहा! शास्त्र की स्वाध्याय करे। आहाहा! एक ओर कहते हैं कि आगम का अभ्यास करना। यह कहना वह तो आत्मा का लक्ष्य रखकर करना। यह तो आत्मा के लक्ष्य बिना अकेले शास्त्र की स्वाध्याय, वह तो शुभभाव, पराधीन परवश है। धर्म नहीं। आहाहा! इसका—स्वाध्याय का भी कहाँ ठिकाना है ? यह तो स्वाध्याय में निरन्तर तत्पर बराबर स्वाध्याय करे। सवेरे, शाम, रात्रि में। आहाहा! बहुत शास्त्र वांचन रखे। उससे क्या हुआ ? वह तो शुभभाव है। वह कहीं धर्म नहीं है। जो करना है, वह कहते हैं, धर्म नहीं है। परन्तु यह तो बाहर की क्रिया की बात है यह तो। अन्दर आत्मा कहाँ आया ? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ अन्दर भरा है। उसका बल्लभ करके उसमें एकाग्र कहाँ हुआ है ? यह तो राग का बल्लभी हुआ है। आहाहा!

स्वाध्याय... में तत्पर रहता है। है ?। **ध्यान,...** करता है। ठीक! यह शुभभाव। आत्मा का ध्यान नहीं। अन्दर विकल्प कम करके ध्यान करे। अभी स्थानकवासी में ध्यान के शिविर बहुत निकालते हैं। था कब तुम्हारे धर्म ? शिविर-विविर लगावे और हो। ध्यान करे। घण्टा, आधा घण्टा ध्यान में रहना। यह विकल्प में रहना, ऐसा। शुभविकल्प रखना, दूसरा विकल्प न होने देना। **ध्यान...** यह तो ध्यान को भी शुभ का कारण कहा है। आहाहा! परलक्षी है न ? स्वलक्षी ध्यान आनन्द का ध्यान होता है। अतीन्द्रिय आनन्द में लीन रहे, वह स्वाध्याय है। स्व-अध्याय। स्व-अपना पठन, अपना ज्ञान। अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर में रमे, उसे निश्चय स्वाध्याय कहते हैं। आहाहा! बारह प्रकार का तप डाला है। ऐसा नहीं कि और ध्यान को अलग रखा। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी लिखा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी स्वाध्याय, ध्यान वह सब शुभ। मोक्षमार्गप्रकाशक में भी लिखा है।

स्वयं ऐसे विकल्प घटाकर ध्यान में बैठे। शुभ विकल्प में। वह मानो कि ध्यान किया। बाहर का ध्यान छोड़कर शुभभाव में अन्दर रहे, इसलिए मानो हमने ध्यान (किया), परन्तु वह शुभभाव भी बन्धन का कारण, संसार है।

शुभ आचरण से च्युत होने पर... आहाहा! और कोई शुभ आचरण से किंचित् भ्रष्ट होने पर **पुनः उनमें स्थापनस्वरूप प्रायश्चित्त,...** करे। आहाहा! तथापि वह प्रायश्चित्त भी शुभभाव है। आहाहा! भारी कठिन बात। यह शुभभाव की व्याख्या है। गाथा शुभभाव की है न? पहले अशुभभाव की गयी। यह शुभभाव की इतनी क्रिया करने पर भी वह सब पराधीन है। आहाहा! प्रायश्चित्त करे, अरे! **विनय,...** करे। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र का विनय करे, वह शुभभाव है। आहाहा! है? विनय मूलो धम्मो। और एक जगह ऐसा कहा। विनय मूल धर्म है। वह तो अन्तर का विनय। आत्मा के आनन्द का विनय, अतीन्द्रिय आनन्द का आदर करके आनन्द का स्वाद लेना, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेना, वह विनय है। आहाहा!

वैयावृत्त्य... लो! साधु का वैयावृत्त्य करे, वह शुभभाव है। परद्रव्य है न? आहाहा! **और व्युत्सर्ग...** त्याग करे। कायोत्सर्ग। यह कायोत्सर्ग करे। ऐसे लक्ष्य... वह शुभभाव है, वह कहीं धर्म नहीं है। आहाहा! ऐसे **नामक अभ्यंतर तपों के अनुष्ठान में (आचरण में) जो कुशलबुद्धिवाला है;...** उसमें कुशलबुद्धिवाला है, कहते हैं। आहाहा! अभ्यन्तर तप में भी कुशलबुद्धिवाला है। आहाहा! **परन्तु वह निरपेक्ष तपोधन साक्षात् मोक्ष के कारणभूत स्वात्माश्रित आवश्यक-कर्म को—निश्चय से परमात्मतत्त्व में...** आहाहा! यहाँ से विशेषण शुरु किया है। एक तो भगवान आत्मा अन्दर निरपेक्ष है। जिसे किसी विकल्प की अपेक्षा ही नहीं। विनय का विकल्प किया इसलिए... आहाहा! दरवाजे में ऐसा किया है न श्रीमद् में? नहीं? सामने लिखा है कुछ। श्रीमद् में आता है। विनय, मोक्ष का द्वार है।

मुमुक्षु : क्षमा, मोक्ष का द्वार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षमा। क्षमा। कौन सी क्षमा? बहुत प्रकार से करते हैं। वह नहीं। अन्तर में आनन्द में रहकर जो कुछ विकल्प उठे ही नहीं, ऐसी दशा को क्षमा कहते हैं। आहाहा! यह तो पूरी सम्प्रदाय से अभी बात ही फेरफारवाली है।

परन्तु वह निरपेक्ष तपोधन साक्षात् मोक्ष के कारणभूत स्वात्माश्रित... स्वात्माश्रित।

जिसमें अकेला आत्मा का ही अवलम्बन रहता है। दूसरी ओर का व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की ओर का भी झुकाव छूट जाता है। आहाहा! उसे यहाँ ध्यान और धर्मध्यान कहते हैं। **स्वात्माश्रित आवश्यक-कर्म को—** अपने आत्मा के आश्रय से जो आवश्यक कर्म है, निर्विकल्प कार्य है, वह **निश्चय से परमात्मतत्त्व में...** वास्तव में तो परमतत्त्व जो भगवान शुद्ध चैतन्यघन, उसमें **विश्रान्तिरूप...** उसमें विश्रान्ति। आहाहा! संसार की थकान नाश करने के लिये चैतन्यमूर्ति भगवान को पकड़कर उसमें विश्रान्ति करना। कहो, शान्तिभाई! यह सब ऐसा सुना था और ऐसा कहा था?

मुमुक्षु : ऐसा न करे तो साधु करे क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे तो सब धर्म मानता हो। यह इनकार किया। वह तो परलक्षी है। सब परलक्षी क्रिया है। स्वलक्षी अन्दर के आत्मा के आनन्द के लक्ष्यवाली नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु अन्दर की मानकर चलें तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मान्यता की पूरी बात ही दूसरी। अभी स्थानकवासी, श्वेताम्बर, अरे..! दिगम्बर में अभी तीनों में। अभी सर्वत्र यह चलता है। आहाहा! इसने यह तपस्या की, इसने ऐसा किया, जंगल में रहा, अकेला रहा, यहाँ रहा। परन्तु उसमें क्या हुआ? जंगल में रहा और अकेला रहा न! रागरहित भगवान अन्दर जंगल है, वहाँ तो रहता नहीं। अनुभवरूपी गिरिगुफा में अन्दर में नहीं रहता। आहाहा! ऐसा सुनने पर कठिन पड़ता है। पूरे सम्प्रदाय में यह बात सुनने को मिलती है, यह करो... और यह करो... और यह करो... और यह करो... और यह करो...। आहाहा!

मुमुक्षु : शान्तिभाई ने कहा न अभी कि परन्तु करे क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करे - अन्दर दृष्टि करे। उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़कर अन्दर आत्मा का लक्ष्य, दृष्टि करे। परन्तु यह सुना नहीं होगा, करे कब?

मुमुक्षु : आत्मलक्ष्यपूर्वक ऐसी क्रिया करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया करे तो वह शुभभाव है। धर्म नहीं। आहाहा! आत्मलक्ष्य तो निर्विकल्प आनन्द है। उसके लक्ष्य से क्या बाहर की क्रिया में लक्ष्य जाए? बाहर में

लक्ष्य जाए, वह तो सब विकल्प और राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह सब चलता है, वह सब खोटा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब खोटा का खोटा, गप्प चलती है। आहाहा!

निश्चय से परमात्मतत्त्व में विश्रान्ति... आहाहा! स्वयं ज्योति सुखधाम। अतीन्द्रिय आनन्द का धाम भगवान, उसमें विश्रान्ति-स्थिर हो। आहाहा! यह निश्चयधर्मध्यान। यह निश्चयधर्मध्यान, सच्चा धर्मध्यान यह है। बाकी यह क्रियाकाण्डवाला धर्म, वह व्यवहार शुभभाव है। आहाहा! **निश्चयधर्मध्यान को तथा शुक्लध्यान को—नहीं जानता;...** इस क्रियाकाण्ड में ही मानो धर्म है, ऐसा मान बैठता है। अन्दर आत्मा के आश्रय से सच्चा धर्मध्यान हो, शुक्लध्यान आत्मा के आश्रय से हो, उसकी तो खबर भी नहीं। आहाहा! है, उसे जानता भी नहीं। वह तो यह क्रिया इसलिए बस।

हमारे तो बेचारे हीराजी महाराज कहते थे। बहुत कठोर क्रिया करते थे। बस, अब हम साधु (हैं), दूसरा साधु कौन होगा? ऐसा कहते थे। यह नहीं बोलते, बहुत कम बोलते। मूलचन्दजी कहते, निर्दोष आहार ले आवे। उनके लिये बनाया हुआ ले नहीं। कपड़ा-बपड़ा भी बिकता हुआ ले नहीं। इसलिए पूरे दिन पड़े रहे। स्वाध्याय करे। हीराजी महाराज दोपहर में स्वाध्याय करे। हाथ में छींकणी रखे। छींक्गी सूँघे और स्वाध्याय करे। ऐसे दोनों करे। आहाहा! छींकणी छूना नहीं चाहिए। छींकणी का व्यसन खराब है। छींकणी सूँघे और स्वाध्याय करे तो असातना होती है। परन्तु वे करते थे। उस समय कुछ खबर नहीं न, आहाहा!

ऐसा जो निश्चयधर्म विश्रान्तिरूप। यह तो थकानरूप, रागरूप। यह सब जो क्रियाएँ कही, वह तो रागरूप, मैलरूप... आहाहा! अविश्रान्ति है। विश्रान्ति तो आत्मा में है। आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें विश्रान्ति पाता हुआ... आहाहा!

निश्चयधर्मध्यान को तथा शुक्लध्यान को—देखा यहाँ? **निश्चय से परमात्मतत्त्व में विश्रान्तिरूप निश्चयधर्मध्यान...** धर्मध्यान, यह अकेला क्रियाकाण्ड या वह धर्मध्यान नहीं। आहाहा! व्यवहार से बोले, विकल्प को धर्मध्यान। आता है। समयसार में आता है। व्यवहार करते हैं, वह व्यवहारधर्मध्यान है। व्यवहारधर्मध्यान अर्थात् राग; निश्चयधर्मध्यान अर्थात् अराग। आहाहा!

विश्रान्ति निश्चय से परमात्मतत्त्वमय में... आहाहा! परमस्वरूप आत्मा अन्दर जो भगवान है, उसमें स्थिर हो, विश्राम करे, वहाँ बैठक करे, वहाँ आसन लगावे। उदासीन— राग और पर से उदासीन होकर वहाँ अन्दर आसन लगावे। आहाहा! उसे तो जानता भी नहीं। उसकी तो उसे खबर भी नहीं। (वह तो ऐसा ही मानता है कि) यह सब करते हैं, वह धर्मध्यान है। आहाहा! और भाषण करनेवाले भी यही सब पोषण देते हैं। उसको ऐसा लगता है कि यह पढ़े हुए हैं, ये भी ऐसा कहते हैं, यह सत्य होगा न! आहाहा! अभी कहते हैं न? दिगम्बर में कहते हैं न! श्वेताम्बर में तो है ही कहाँ (सच्ची बात)? दिगम्बर में वे श्रुतसागर (जो) शान्तिसागर की परम्परा से पथानुगामी आये हुए। अभी पाट पर धर्मविजय-धर्मसागर है और यह हैं पढ़े हुए वांचन किये हुए। वह कहते हैं कि अभी शुभयोग ही होता है। धर्म नहीं होता, अधर्म ही होता है, (ऐसा इसका अर्थ हुआ)। आहाहा! यह बाह्य त्याग देखकर, नग्न देखकर ये अपने महाराज हैं। यह जो कहते हैं, वह बराबर कहते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **विश्रान्तिरूप निश्चयधर्मध्यान को तथा शुक्लध्यान को—नहीं जानता; इसलिए परद्रव्य में परिणत होने से...** यह सब क्रियाएँ जो हैं, वे तो परद्रव्य में परिणत हैं, राग में परिणत हैं। आहाहा! कहो- शाम-सवेरे स्वाध्याय करे, ध्यान करे, स्वाध्याय में बराबर रुके। यह सब राग में रुकना है। आहाहा! वह परद्रव्य परिणत है। **उसे अन्यवश कहा गया है।** उसे तो पर के वश हुआ कहने में आता है। ऐसी क्रिया करनेवाले को राग में वश हुआ कहा जाता है। आहाहा! पराधीन सपने सुख नाहीं। आहाहा! उसे पराधीन कहने में आता है। आहाहा! अरे! यह बात सुनी नहीं थी। क्या है यह? हीराजी महाराज हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे। एक बार एक प्रश्न किया था (संवत्) १९८० के वर्ष में। मैंने कहा, यह अनुभव क्या? और यह विभाव क्या? तो कहे, यह विभाव अपने नहीं, अपने नहीं। विभाव और क्या? अनुभव-अनुभव, यह अन्यमति में, वेदान्त में (होता है), अपने नहीं। आहाहा! उन्होंने नहीं कहा था परन्तु दूसरे ने कहा था। आहाहा!

इसलिए परद्रव्य में परिणत होने से उसे अन्यवश कहा गया है। पर के वश पराधीन है। ऐसा क्रियाकाण्ड करनेवाला राग के वश हो गया है। आहाहा! **जिसका चित्त तपश्चरण में लीन है...** आहाहा! **ऐसा यह अन्यवश श्रमण देवलोकादि के क्लेश की परम्परा...** प्राप्त करेगा। आहाहा! देवलोक, यह वहाँ क्लेश है। वहाँ कहाँ सुख है? राग है।

अशुभराग में सुख मानता है। आहाहा! **जिसका चित्त तपश्चरण में लीन है ऐसा यह अन्यवश श्रमण देवलोकादि के...** देवलोकादि। कोई मरकर मनुष्य भी होता है।

क्लेश की परम्परा प्राप्त होने से शुभोपयोग के फलस्वरूप प्रशस्त रागरूपी अंगारों से सिकता हुआ,... आहाहा! ऐसी भाषा की है। इस शुभोपयोग से-प्रशस्तराग से, **प्रशस्त रागरूपी अंगारों से सिकता हुआ,...** आहाहा! शुभराग से आत्मा सिकता है-जलता है। आहाहा! उसमें शान्ति जलती है। शुभराग से शान्ति-धर्म प्राप्त नहीं होता। आहाहा! अब यह कहे, इतना करे तो धर्म होता है, ऐसा करे तो धर्म होता है, पहले ऐसा व्यवहार करे तो धर्म होता है। यह बात एकदम मिथ्या है। आहाहा! **अंगारों से सिकता हुआ,...** आहाहा! शुभभाव से तो यह फल है। परन्तु **आसन्नभव्यतारूपी गुण का उदय होने पर...** यह जब फिर स्ववश में आवे, पर के ऊपर का लक्ष्य छोड़ दे, तब धर्म को पाता है। यह विशेष बात है.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)